Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 6 | ISSN : 2582-0095

कठोपनिषद् व मुण्डकोपनिषद् में वैराग्य की विवेचना

डॉ. सुमन
प्रोफेसर पतंजलि आयुर्वेद महाविद्यालय, हरिद्वार।
एवं शोधच्छात्रा डी.लिट. पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

Article Info
Volume 4 Issue 6
Page Number: 57-62

Publication Issue :
November-December-2021

Article History
Accepted : 01 Dec 2021
Published : 25 Dec 2021

शोधपत्र सार– संसार में प्रतिदिन कुछ न कुछ घटित होता रहता है। इन घटनाओं को सामान्य व्यक्ति देखता है, सुनता है और जानता भी है, परन्तु इन घटित घटनाओं से कोई सीख नहीं लेता है। किन्तु कुछ व्यक्तित्व ऐसे भी देखे, सुने व जाने जाते हैं, जो बहुत छोटी–छोटी घटनाओं से बहुत बड़े–बड़े निर्णय लेते हैं। भारतवर्ष में ऐसे महान् व श्रेष्ठ व्यक्तियों की कमी नहीं है, जिन्होंने समाज में होने वाली घटनाओं का विश्लेषण कर बहुत बड़े–बड़े ऐश्वर्यों, सुखों, साधनों व सुविधाओं को तिनके की भाँति ठुकरा कर बहुत कठिन राह को चुना है और अन्ततोगत्वा परमधाम मोक्ष को प्राप्त हो गए हैं। समाज में कुछ व्यक्तित्त्व ऐसे देखे जाते हैं, जो सामान्य लोगों से हटकर या भिन्न अथवा अलग सोचते हैं, अलग जीवन जीते हैं तथा अलग रास्ता अपनाते हैं। वैसे सामान्यत: व्यक्ति अपने व अपने परिवार व अपने रिश्तेदारों के सुख–सुविधाओं के बारे में सोचते हैं परन्तु एक वैराग्यभाव से परिपूर्ण व्यक्ति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् सारी धरती मेरा परिवार है अत: वह सारे संसार के सुख–सुविधाओं के बारे में सोचता है। ऐसे ही एक सामान्य व्यक्ति सुबह से शाम तक धन कमाने व भरण–पोषण तथा सांसारिक भोगों को भोगने में ही अपना पूरा जीवन बिता देता है परन्तु संसार से विमुख होकर त्याग के रास्ते पर चलने वाला एक विरक्त संन्यासी जीवनभर संसार का उपकार करता हुआ परमपिता परमेश्वर की उपासना करता हुआ आनन्दमय जीवन बिताता है। इसी प्रकार सामान्य जन प्रेयमार्ग अर्थात् भोग–विलास का रास्त अपनाते हैं, जो कि वर्त्तमान में सुखदायी प्रतीत होता है और वस्तुत: परिणाम में दु:खदायी होता है– **'विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥'**[1] जब कि एक मुमुक्षु व्यक्ति तलवार की धार के समान अत्यन्त कठिन श्रेयमार्ग को अपनाता है, क्योंकि वह जानता है कि यह मार्ग वर्त्तमान में कठिन प्रतीत होने वाला व वस्तुत: परिणाम में सुख देने वाला है। अत: संसार में दो ही रास्ते चलने के लिए बताए गए हैं– श्रेयमार्ग व प्रेयमार्ग।

मुख्य शब्द- श्रेय, प्रेय, विद्या, अविद्या, ईश्वर–प्रणिधान, अपरिग्रह, आत्मा, ईश्वर, कोश।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

कठोपनिषद् में वैराग्य की विवेचना- उपनिषद् ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं, अत: उनमें वैराग्य का विषय प्रधानरूप से वर्णित है। कठोपनिषद् में तो संसार की अनित्यता का बहुत ही स्पष्ट शब्दों में विस्तार से वर्णन मिलता है। यम द्वारा नचिकेता को बहुत सारे सांसारिक पदार्थों के प्रलोभन दिए जाने पर नचिकेता ने इनकी अनित्यता का बहुत सुन्दर उत्तर यम को इस प्रकार दिया है कि ये सुखभोग मनुष्य के लिए श्वोभाव हैं–आज हैं, कल नहीं। ये इन्द्रियों के तेज को क्षीण कर देते हैं। इन भोगों को भोगने के लिए सारा का सारा जीवन भी बहुत थोड़ा है। ये हाथी–घोड़े, यह नाचना–गाना अपने ही पास रख, ये मुझे नहीं चाहिए। मनुष्य धन से तृप्त नहीं हो सकता। जो वस्तुएँ स्वयं अध्रुव हैं, अस्थिर हैं, उनसे वह ध्रुव, स्थिर ब्रह्म नहीं प्राप्त हो सकता। अमृत को चाहने वाला कोई धीर पुरुष ही होता है, जो विषयों से आँखें मून्द लेता है और मुड़ कर आत्मा को देखता है।

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज:।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।[2]

अन्यत्र भी वैराग्यपरक वर्णन इस प्रकार मिलता है–

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुष सिनीत:।
तयो: श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥
श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर:।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योग क्षेमाद् वृणीते॥[3]

यमाचार्य नचिकेता से कहते हैं– श्रेय मार्ग अन्य है, प्रेय मार्ग अन्य है। ये दोनों भिन्न–भिन्न प्रयोजनों से पुरुष को बांधते हैं। इनमें से श्रेय को ग्रहण करने वाले का भला होता है। जो प्रेय का वरण करता है, वह लक्ष्य से हट जाता है। श्रेय तथा प्रेय, ये दोनों मार्ग मनुष्य के सामने आते हैं। धीर–पुरुष वह है, जो कोई काम जल्दी में नहीं करता, तात्कालिक फल नहीं देखता। वह प्रेय की अपेक्षा श्रेय का ही वरण करता है। मन्द–बुद्धि व्यक्ति योग–क्षेम–कुशल–मंगल–सुख–चैन–के लिए, आराम से जीवन बिताने के लिए प्रेय मार्ग का वरण करता है।

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त॥
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुन: पुनर्वशमापद्यते मे॥[4]

ये दोनों–अविद्या तथा विद्या–एक दूसरे से दूर हैं, विपरीत हैं, उल्टे हैं, विलक्षण हैं। हे नचिकेता! मैं यह मान गया कि तू विद्या की चाहना करने वाला है, श्रेय मार्ग का पथिक है। तुझे तरह–तरह की कामनाएँ ललचा नहीं सकीं, तूने प्रेय–मार्ग पर चलना पसन्द नहीं किया। संसार के लोग अविद्या में फंसे हुए, सांसारिक भोगों में पड़े हुए, अपने को धीर और पंडित माने फिरते हैं। टेढ़े रास्तों से इधर–उधर भटकते हुए ये मूढ़ ऐसे जा रहे हैं जैसे अन्धा अन्धे को रास्ता दिखा रहा हो। जो बड़ा होकर भी बुद्धि का बच्चा ही है। धन के मोह में दूसरी कोई बात सोच ही नहीं सकता। ऐसे प्रमादी को साम्पराय–शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर–प्रणिधान तथा अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह–यम–नियम–पसन्द नहीं आते। वह यह मान बैठा है कि यही लोक सबकुछ है, परलोक में कुछ भी नहीं है। ऐसा व्यक्ति बार–बार मेरे चंगुल में आ फँसता है, बार–बार मरता है, बार–बार पैदा होता है।

जानाम्यह शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।

ततो मया नचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्॥

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥5

यमाचार्य नचिकेता को समझाते हुए कहते हैं कि मैं जानता हूँ कि यह धन-सम्पत्ति अनित्य है। जो वस्तुएँ स्वयं अध्रुव हैं, अस्थिर हैं, उनसे वह ध्रुव, स्थिर ब्रह्म नहीं प्राप्त हो सकता। इसी कारण मैंने नाचिकेत-अग्नि का चयन किया है। तीनों सन्धियों को पार किया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों में से गुजरा हूँ। इस प्रकार अनित्य द्रव्यों से ही नित्य को मैंने पा लिया है। वैसे तो अनित्य की प्राप्ति नहीं हो सकती परन्तु यदि नाचिकेत-अग्नि का चयन किया जाए, नचिकेता में जो अग्नि जल उठी थी, वह हममें भी प्रदीप्त हो उठे और चारों आश्रमों में से प्रत्येक आश्रम के अनुभव से जो नवीन आत्म-ज्योति मिले, उसे अपना पथ-प्रदर्शक बनाया जाए तो अनित्य संसार से भी नित्य की प्राप्ति हो सकती है। तूने कामनाओं को पूर्ण करने की उमँगों को (पुत्रैषणा) को, धनी होने के कारण मिलने वाले सम्मान को (वित्तैषणा) को, कभी समाप्त न होने वाले कर्मकांड को (लोकैषणा) को, निर्भीकता की सीमा को, चारों ओर से उच्च-ध्वनि से होने वाले जय-जय नाद को, सब तरह की प्रतिष्ठा को, आँखों से देखकर हे धीर नचिकेता! धीरता के साथ छोड़ दिया। उसके दर्शन कठिनता से होते हैं। वह गूढ़ से भी गूढ़ है। वह दुर्गम गुफाओं में छिपा बैठा है। वह सबसे पुरातन है। उसे अध्यात्मयोग से प्राप्त कर सकते हैं।-अध्यात्म-योग अर्थात् इन्द्रियों का ऐसा चलन, जिससे वे विषयों की ओर जाने की अपेक्षा आत्मा की ओर चलती हैं। उस देवता को जब मनुष्य मान जाता है, तब वह धीर हो जाता है, हर्ष तथा शोक दोनों को छोड़ देता है, द्वन्द्वों से ऊपर उठ जाता है।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्। अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेत शकेमहि॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ [6]

जो लोग यज्ञ-याग आदि में इसलिए लगे हुए हैं कि भव-सागर को तर कर पार जाना चाहते हैं, अभय, परब्रह्म को पाना चाहते हैं। उनके लिए वास्तविक पुल तो कर्मकांड नहीं, परन्तु नाचिकेत-अग्नि अर्थात् ज्ञानकाण्ड ही है। उससे हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। आत्मा रथी है अर्थात् रथ का मालिक है, शरीर एक रथ है, बुद्धि सारथी है-मन लगाम है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इन्द्रियों के विषय वे मार्ग हैं, जिन पर इन्द्रियरूपी घोड़े दौड़ते हैं। मनीषी लोग कहते हैं कि जब आत्मा, इन्द्रियाँ तथा मन मिलकर कोई काम करते हैं, तब मनुष्य भोक्ता कहलाता है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥[7]

इसलिए उठो, जागो, जिन शान्तात्मा महात्माओं को परमात्मा का वरदान मिल चुका है, उनकी शरण में पहुँचो और उनसे ब्रह्म-विद्या का बोध प्राप्त करो। यह मार्ग तेज किए हुए छुरे की धार के समान है, उसे लाँघना कठिन है। कवि लोग कहते हैं कि वह मार्ग दुर्गम है। वहाँ शब्द नहीं, स्पर्श नहीं, रूप नहीं, रस नहीं, गन्ध नहीं, उत्पत्ति व विनाश नहीं है। वह नित्य है, अनादि है, अनन्त है, महान् है, सबसे परे है, ध्रुव है, निश्चल है और एकरस है। मनुष्य जब उसे निश्चित रूप में जान लेता है तब मृत्यु के मुख से छूट जाता है।

मुण्डकोपनिषद् में वैराग्य की विवेचना- मुण्डकोपनिषद् में भी वैराग्य की महत्ता का वर्णन पद-पद पर मिलता है। भौतिक पदार्थों की आसक्ति को बन्धन का कारण बताकर उस ब्रह्म की ओर जाने की प्रेरणा पद-पद पर इस प्रकार की गई

है- द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक अर्थात् यह विशाल ब्रह्माण्ड एवं मन तथा सभी प्राण अर्थात् यह छोटा पिण्ड, उसी ब्रह्म में ताने-बाने की तरह ओत-प्रोत है। उसी एक आत्मा को पहचानो-**'तम् एव एकं जानथ'**, अन्य बातें करना छोड़ दो- **'अन्या वाचो विमुञ्चथ'**, दु:खमय भवसागर से पार होकर अमृत तक पहुँचने का वही पुल है-'अमृतस्य एष सेतु:' जो व्यक्ति कामनाओं को ही सब-कुछ मान बैठा है, उन्हीं की आराधना करता है, वह उन कामनाओं से भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता है। जिस व्यक्ति के लिए कामनाएँ पर्याप्त हो चुकी हैं, बहुत हो चुकी हैं, अब उनमें वह नहीं फँसता हुआ वैराग्यभाव से ओतप्रोत होकर कृतात्मा हो जाता है। आगे भी इस वैराग्यभाव की बहुत सुन्दर विवेचना इस प्रकार की गई है-

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थ: सनातन:। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते॥[8]

यह मनुष्य का शरीर तो एक सनातन अश्वत्थ है-(अ=नहीं, श्व:=कल, स्थ=स्थायी)। यह आज है, कल नहीं। यह उल्टा टँगा हुआ वृक्ष है। अगर मनुष्य को उल्टा लटका दिया जाए तो सिर की जटाएँ जड़ की तरह और हाथ-पैर वृक्ष की शाखाओं की तरह फैल जाते हैं। इस शरीर में क्यों रमता है, इस देह को तो पेड़ की तरह जड़ समझ, वास्तविक सत्ता यह नहीं, वह है। वही शुक्र है, वही ब्रह्म है, वही अमृत कहलाता है। सब लोक उसी में आश्रित हैं। उससे बढ़कर कोई नहीं। यही-एतत् वै तत्-ब्रह्म है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिता:। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥[9]

मनुष्य के हृदय में जो कामनाएँ हैं, वे जब छूट जाती हैं तब मर्त्य अमृत हो जाता है और यहीं, इस जन्म में, ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। मनुष्य के हृदय में जो गाँठें हैं, वे जब टूट जाती हैं तब मर्त्य अमृत हो जाता है। यह मरण धर्मा अमर हो जाता है, यही शास्त्रों का उपदेश है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशया:। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥10

हृदय की सब गाँठें (Emotional Complexes) टूट जाती हैं। मस्तिष्क के सब संशय छिन्न-छिन्न हो जाते हैं। मनुष्य जिन नाना कर्मों में व्याकुलता से भागा फिरता है, वे छूट जाते हैं। जब उसका पर और अवर ओर-छोर दीख जाता है। हिरण्मय कोश सोने का खजाना-जो तुम्हें दीखता है, इससे दूर एक आध्यात्मिक सुवर्ण का खजाना है। दुनिया के खजाने का सिक्का मैला है, उस खजाने का सिक्का निर्मल है, निष्कल्मष है। तुम इस सोने की चमक से चकाचौंध हो रहे हो, उसे देखो जो शुभ्र है, ज्योतिषां ज्योति: ज्योतियों की ज्योति है। संसार में रमने वाले इन खजानों के गीत गाते हैं। आत्मा को जानने वाले उस खजाने को जानते हैं, जिसकी चमक के बराबर दुनिया में कोई चमक है ही नहीं। उसकी ज्योति के सम्मुख सूर्य की ज्योति क्षीण हो जाती है। चन्द्र, तारे, विद्युत् वहाँ तेजोहीन हो जाते हैं; इस आग का तो कहना ही क्या? उसकी ज्योति के पीछे ही सब प्रकाशित होते हैं। उसके प्रकाश से ही यह सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हो रहा है। अमृत ब्रह्म ही सामने है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दक्षिण में है, ब्रह्म ही उत्तर में है, नीचे ब्रह्म है, ऊपर ब्रह्म है। यह सम्पूर्ण विश्व और इस संसार में जो-कुछ भी वरिष्ठ है, सब ब्रह्म ही ब्रह्म का प्रसार है, उसी का विस्तार है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय: समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जन: परमं साम्यमुपैति॥[11]

सुन्दर पंखों वाले, साथ-साथ जुड़े हुए, एक-दूसरे के सखा दो पक्षी हैं। ये दोनों एक ही वृक्ष को सब ओर से घेरे हुए हैं। उनमें से एक वृक्ष के फल को बड़े स्वाद से चख रहा है, दूसरा बिना चखे सब कुछ देख रहा है। जीवात्मा तथा परमात्मा ही दो पक्षी हैं, प्रकृति ही वृक्ष है, कर्मफल ही वृक्ष का फल है। जीवात्मा को कर्मफल मिलता है, परमात्मा प्रकृति में सक्त हुए बिना सम्पूर्ण विश्व का द्रष्टा है (श्वेताश्वतर्. में भी यही भाव है)। प्रकृति-रूपी वृक्ष तो दोनों के लिए समान ही है, परन्तु जीवात्मा तो उसके फल को चखकर बेबस हो जाता है, सामर्थ्यहीन हो जाता है, उसी के खाने में निमग्न हो जाता है, बाद में अपनी मूर्खता पर पछताने लगता है। दूसरी ओर परमात्मा? परमात्मा प्रकृतिरूपी वृक्ष के फल को नहीं खाता, मात्र द्रष्टा बना हुआ है, सम्पूर्ण प्रकृति उसी की उपासना में लीन है। जीवात्मा जब परमात्मा की इस महिमा को देख लेता है, तब शोक करना, पछताना छोड़ देता है। जब जीवात्मा द्रष्टा बनकर बृहत् विश्व के कारण, इसके स्वामी, इसके कर्त्ता, प्रकाश-स्वरूप उस परम पुरुष को देख लेता है, वह बोध प्राप्त कर पुण्य-पाप को छोड़कर, शोक, मोह, राग, द्वेष से अलग होकर परम समता को प्राप्त कर लेता है।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥[12]

आत्मा को शारीरिक बल से हीन व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। मानसिक प्रमाद में पड़ा हुआ व्यक्ति भी इसे प्राप्त नहीं कर सकता। अलिंग तप-प्रयोजन हीन तपस्या- करने वाला भी इसे प्राप्त नहीं कर सकता। जो यह सब कुछ जानता हुआ इन उपायों से उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, उसे आत्मा प्राप्त होना तो क्या, वह होना उससे पीठ फेरकर अपने ब्रह्म धाम में जा छिपती है। उसके सामने प्रकट ही नहीं होती। ज्ञानामृत से तृप्त दिन-रात आत्माराधन में व्यस्त, वीतराग, प्रशान्त ऋषि, आत्मा को प्राप्त करके अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़ देते हैं। परमात्मा सब जगह पहुँचने वाला है।

निष्कर्ष- कठोपनिषद् एवं मुण्डकोपनिषद् के वैराग्य विषय का परिशीलन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकल कर आता है कि दिन-रात सांसारिक पदार्थों में डूबे रहने वाले व्यक्ति की गति बहुत ही दयनीय होती है क्योंकि उसने अपना सारा अनमोल जीवन तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति में नष्ट कर दिया। ऐसे दयनीय जीवन से विवेकी व्यक्ति तो यह सीख ले लेता है कि ईश्वर प्रदत्त इस श्रेष्ठ जीवन को तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति में नहीं लगाना है अपितु नचिकेता की तरह जीवन व जागतिक वस्तुओं की नश्वरता, अस्थिरता व क्षणिकता को जानकर इनके पीछे न भागकर श्रेयमार्ग अर्थात् मुक्ति के मार्ग की ओर अग्रसर होना है। अपने वर्त्तमानकालिक इस जीवन में यदि यथार्थता को नहीं जाना तो हम भी इस दुनियाँ की तरह धन-ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्र, हाथी-घोड़े व नाच-गाने में अपना अमूल्य जीवन समाप्त कर देंगे। अत: सांसारिक भोगों से ऊपर उठकर श्रेयमार्ग पर चलने में ही सबका भला है।

संदर्भ-

1. गीता प्रेस गोरखपुर, 2019 ई., उ.प्र., गीता.- 18.38
2. डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार, विजयकृष्ण लखनपाल प्रकाशन,W-77 , ग्रेटर कैलाश-1, नई दिल्ली, कठ.उप. 1.26.27
3. वही. 2.1-3
4. वही. 2.4-6
5. वही. 2.10-12
6. वही. 3.2-4
7. वही. 3.14,15
8. वही. 6.1
9. वही. 6.14-15
10. आदिशङ्कराचार्य, 2000ई., गीता प्रेस गोरखपुर, उ.प्र., मु.उप.- 2.2.8-11
11. वही. 3.1.1-3
12. वही. 3.2.4